प्रकाशक
प्राकृतिक चिकित्सा-संघ
गोरखपुर

पहला संस्करण : नवंबर, १९५०
दूसरा संस्करण : जनवरी, १९५१
मूल्य
आठ आना

मुद्रक
जीवन कृष्ण शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

गांधीजीका कथन

लूई कूनेके संबंधमें

अत्यधिक अनुभवोंके बाद जर्मनीनिवासी श्रीलूई कूनेने यह आविष्कार किया है कि जलके अनेक उपचार रोगोंको दूर करनेमें बड़ा काम करते हैं। इस विषयपर उनकी लिखी हुई पुस्तकें अनेक भाषाओंमें अनुवाद हुई हैं।

कूने सब मर्जोंका मूल मेदेको मानता है। मेदेमें ताप होनेपर शरीरके बाहरी भागोंमें फोड़े-फुंसियां या दूसरे रूपोंमें रोग प्रकट होते हैं अथवा ताप बाहर आकर सारे शरीरको तपाता है।

कूनेके पहलेके लेखक जलोपचारपर बहुत कुछ लिख गये हैं। 'जलोपचार' नामकी एक बहुत पुरानी किताब है। पर कूनेके पहले किसीने यह नहीं कहा था कि सब बीमारियां मेदेसे पैदा होती हैं। कूनेके सिद्धांतको सर्वांशमें सत्य माननेकी जरूरत नहीं है, न इसकी बहसमें उतरनेकी ही। पर इतना तो सिद्ध ही है कि अनेकानेक रोगोंमें कूनेके सिद्धांत और उसका इलाज सफल होता है। डरबनके स्वर्गीय मजिस्ट्रेट टीटन धनुर्वातसे अपंग हो गये थे। उन्होंने डाक्टरोंका उपचार कराकर कोई लाभ नहीं पाया। किसीने उन्हें कूनेके यहां जानेकी सलाह दी। वहांसे वह अच्छे हो आये और बहुत वर्षोंतक डरबनमें रहे। वह बराबर बहुतोंको कूनेका इलाज आजमानेकी सलाह देते थे।

टीटनका एक नाम तो मैंने उदाहरणके लिये कहा है। उन्हींकी भांति कूनेकी विधिसे लाभ उठानेवालोंकी संख्या बहुत बड़ी है।

'आरोग्य साधन'से]

प्रकाशककी ओरसे

हमें प्राकृतिक चिकित्सा संघकी ओरसे श्रीलूई कूनेकी यह पुस्तक प्रकाशित करते हुए बड़ी खुशी हो रही है।

कूनेकी अंग्रेजीमें चार पुस्तकें हैं :

१. New Science of Healing—नीरोग होनेका नया उपाय।
२. Facial Expression—मुखाकृति-निदान।
३. Am I well or sick ?—मैं तंदुरुस्त हूं या बीमार ?
४. Rearing of children—बच्चोंकी रक्षा।

यह तीसरी पुस्तकका सारांश है। इसके बाद 'नीरोग होनेका नया उपाय' निकाला जायगा।

इस पुस्तकके अंतमें 'प्राकृतिक चिकित्सा-संघ'का पूरा परिचय दिया गया है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि उसे ध्यान-पूर्वक पढ़ें और उसके अधिक-से-अधिक संख्यामें सदस्य बनकर प्राकृतिक चिकित्साके कार्यको बल देनेकी कृपा करें।

मूल लेखककी भूमिका

आज मनुष्योंके स्वास्थ्यकी जैसी दशा है उसमें हर आदमीका 'मैं तंदुरुस्त हूं या बीमार'? यह जानना फर्ज हो गया है। रोज-रोज लोगोंकी तंदुरुस्ती, ताकत और सहनशक्ति घटती जा रही है, यह कम चिंताकी बात नहीं है।

सरकार जनताके आरोग्यसंबंधी कुछ विषयोंपर ध्यान दे सकती है; लेकिन अपने स्वास्थ्यपर हर आदमीको खुद ध्यान देना चाहिए। किसी औरके भरोसे स्वास्थ्य-प्राप्तिकी आशा करना भारी भूल है।

मेरा यह छोटी किताब लिखनेका मतलब है कि लोग बिना किसी शक-शुबहेके अपने स्वास्थ्यकी जांच कर सकें। इसमें संक्षेपमें बिगड़ी तंदुरुस्तीको सुधारनेके उपाय भी बता दिये गए हैं।

यह किताब पहले पहल १८८५में निकली थी, तबसे इसकी कई आवृत्तियां हो चुकी हैं। इससे पता चलता है कि लोग अपनी तंदुरुस्ती-के बारेमें जानना चाहते हैं।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि यह किताब हर पाठकका ध्यान अपने तथा अपने कुटुंबके स्वास्थ्यकी ओर आकर्षित करे और सबको सशक्त तथा सतेज होनेमें सहायक हो।

लैपजिक
१ जनवरी १८९३

—लूई कूने

मेरा अनुभव

आजसे ३१ साल पहले सन् १९१९में मैंने इस पुस्तिकाका एक संस्करण कलकत्तासे प्रकाशित किया था और कूनेकी चिकित्सापर अपना अनुभव लिखा था। उसे नीचे दे रहा हूं :

"मुझे शायद होश संभालनेके बादसे ही कब्जकी शिकायत रहती आई थी। इसके लिए कई साल पहले दवाइयां खाता रहा। इधर हफ्तेमें दो बार एनीमा लेने लगा था। भोजन सादा किया, कुछ फल खाता रहा, पर विशेष फल न होता था। घर आकर उपवास-चिकित्सा आजमानेकी सोच रहा था। कई मित्रोंको लूई कूनेके सिद्धांतानुसार जल-चिकित्सा करते देखा-सुना था, लेकिन उस ओर मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया था। पर जब मेरे एक पुराने रोगी मित्र देहरादूनसे जल-चिकित्साका लाभ उठाकर आये तो मेरा ध्यान उधर खिंच गया। उनकी नीरोगिताके हाल सुन-देखकर मैंने उसी दिनसे मेहन और उदर-स्नान आरंभ कर दिये। भोजनके बारेमें मैंने उनसे सुना और कूनेकी किताबमें पढ़ा कि आगसे पकाये हुए सभी भोजन कुछ-न-कुछ भारी होते हैं; अपने असली रूपमें भोजन जल्दी पचता ह और लाभदायक होता है; शीघ्र नीरोगिताकी इच्छा रखनेवालोंको इसपर विशेष ध्यान देना चाहिए। मैं तो हफ़्ते-हफ़्ते उपवास करनको तैयार बैठा था; यह परीक्षा उससे कड़ी नहीं थी। उसी दिनसे पके भोजनको प्रणाम किया। कच्चे गेहूं और ताजे फलों (ऋतु अनुसार)पर गुजर करना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि पांच-छः दिनोंमें ही कब्ज कम हो चला। दो महीनेके प्रयोगमें यह आशा बंध गई कि हमेशाके लिए कब्जसे छुटकारा हो जायगा। स्वास्थ्यमें विशेष उन्नति हुई (जो लोग एकमात्र मोटाई—शरीरपर दूषित मांस लादनेको स्वास्थ्यका लक्षण समझते हैं उनकी दृष्टिसे नहीं)। काममें उत्साह बढ़ गया, मनमें प्रसन्नता और शांति। आलस्य भागा। नींद अच्छी आने लगी। महीनेमें कई बारके स्वप्नदोषसे छुटकारा मिला।"

गोरखपुर
१५ नवंबर. १९५०

—महावीरप्रसाद पोद्दार

विषय-सूची

मैं तंदुरुस्त हूं या बीमार ?

: १ :

बीमारीका कारण

मनुष्य नीरोग उस समय समझा जाना चाहिए जब शरीरमें किसी तरहकी तकलीफ या बेचैनीके बिना उसकी इंद्रियां अपने कर्तव्य पूरे कर रही हों।

काम करनेपर थकान आना स्वाभाविक है, उससे कोई कष्ट नहीं होता, केवल विश्राम और निद्राकी स्वाभाविक इच्छा होती है। नीरोग मनुष्यको श्रम और विश्राम दोनों एक समान प्रिय होते हैं। सारी भीतरी इंद्रियोंके कार्य प्रायः इस तरह होते रहते हैं कि हमें भानतक नहीं होता। इंद्रियोंमें किसी प्रकारकी अव्यवस्था उत्पन्न होनेपर या कोई बाहरी चोट-चपेट लगनेपर ही पता चलता है। जैसे, खानेके बाद तत्काल मनुष्य यदि तृप्तिके अतिरिक्त किसी प्रकारकी अशांति अनुभव करता है तो उसके मेदेमें कोई खराबी होनी चाहिए, अथवा उसने गलत खुराक खाई है।

शरीरके सब अंगोंका एक-दूसरेके साथ ऐसा गहरा

संबंध है कि किसी एक अंगके अपना काम भलीभांति न करनेसे सारे शरीरपर उसका बुरा असर पड़ता है, वैसे ही, जैसे कि किसी परिवारमें एकके बीमार पड़नेपर सबको कुछ-न-कुछ तकलीफ उठानी पड़ती है। प्रायः हर आदमी अपनी रोजाना जिंदगीमें यह अनुभव करता है। हाथमें चोट लग जानेपर केवल हाथके काममें ही बाधा नहीं पड़ती, बल्कि हमारी इच्छाके अधीन न रहनेवाली हृदय और उदर-सरीखी इंद्रियोंतकपर इसका प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी किसी फोड़े या घावकी वजहसे ज्वर आ जाता है, कुछ कालके लिए हमारी भूखतक गायब हो जाती है। कारण, ज्ञान-तंतुओंद्वारा हमारे शरीरके सब अंग परस्पर संबद्ध हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक विकारका असर पूरे शरीरपर पड़ता है। शरीरका कोई अंग अपना काम सुचारु रूपसे नहीं कर पाता।

अधिक दिनोंसे इकट्ठे हुए विकार तो ऐसी अवस्थामें मनुष्यके समूचे शरीरमें प्रत्यक्ष परिवर्तन कर देते हैं। आदमीके चेहरेपर ये परिवर्तन भलीभांति झलकते हैं। कारण, चेहरेपर विशेष रूपसे ज्ञानतंतुओं-का एक समूह है। मुखपर, जीर्ण या तीव्र रोगों-द्वारा पड़े हुए प्रभावको साधारण मनुष्य भी भांप सकता है। पर रोगकी बिल्कुल आरंभिक अवस्था-

में, विशेषतः जीर्ण रोगोंमें, चेहरेसे रोगका पता लगाना असंभव न होते हुए भी वहुत कठिन है । ग्रंथकर्ताके वहुत वर्षोंतक ध्यानपूर्वक इस प्रश्नपर विचार करनेका फल 'आकृति-निदान' (Science of Facial Expression) का आविष्कार है। तवसे उसे चेहरा तथा गर्दनकी दशा और आकृति देखकर रोगके स्थान तथा अवस्थाका सही निर्णय करनेमें सदा सफलता मिली है। लेकिन चेहरेके लक्षणोंसे रोगका पता लगानेकी कला वर्णनद्वारा वहुत मुश्किलसे सिखलाई जा सकती है, इसका वास्तविक ज्ञान तो निरंतर अभ्याससे ही हो सकता है। पर यहां हम रोग-निदानकी इसकी अपेक्षा एक सरल विधि पाठकोंको वतलायेंगे।

शरीरकी वृद्धि और पोषण करनेवाली इंद्रियां अर्थात् फेफड़ा और मेदा हमारे शरीरमें सबसे अधिक महत्त्व रखते हैं। साथ ही, ये दोनों, रोगी भी शीघ्र होते हैं। जांचके परिणाम-स्वरूप यह सिद्ध हो गया है कि सारे भीतरी विकारोंकी जड़ यह मेदा ही है। पाचन विगड़ते ही अन्य रोगोंका आक्रमण अनिवार्य हो जाता है। कम-से-कम भोजनका रस ठीक न वननेका असर तो होता ही है। रुधिरका अच्छा या वुरा होना पाचन-क्रियापर निर्भर है, और शरीरके उचित पोषणके लिए रुधिरका शुद्ध होना आवश्यक है।

: २ :

उचित पाचन

वहुत कम आदमी ही यह दावा कर सकते हैं कि उनकी पाचन-शक्ति विल्कुल ठीक है। इनकी संख्या उतनी ही होगी जितनी नीरोग रहकर बुढ़ापेतक जीनेवालोंकी। यह आश्चर्यकी वात नहीं है, क्योंकि लोग मेदेपर जितना जुल्म करते हैं उतना अन्य किसी अंगपर नहीं करते।

मेदेमें कोई खरावी होनेपर हमें तुरंत उसपर ध्यान देना चाहिए। उसकी पहचान वहुत ही आसान है। डकार, कै (उल्टी), गलेमें जलन या मेदेमें किसी तरहका भारीपन विकारके निश्चित चिह्न हैं। पर ये लक्षण जवतक वढ़कर तकलीफ नहीं देने लगते तवतक प्रायः इनकी परवा नहीं की जाती।

हम यहां एक ऐसी पहचान वताना चाहते हैं कि जिससे मेदेका छोटे-से-छोटा विकार भी सहजमें जान लिया जा सकता है। मेदेमें कोई खरावी न रहनेपर सारी पाचनेंद्रियां अपनी-अपनी जगह अपना काम भलीभांति करती रहती हैं। मलका निकास भी उचित रूपमें होता है। आंतका द्वार—मलका निकासद्वार—ऐसी

खूबीसे वना हुआ है कि शौचके वाद वहां जरा भी मल लगा न रहना चाहिए। यदि कभी वहां मल लगा रह जाय तो समझना चाहिए कि वड़ी आंतमें मल पहुंचानेके पूर्व काम करनेवाली इंद्रियोंने अपना काम भली प्रकार नहीं किया है और पाचनेंद्रियोंमें कुछ दोष अवश्य हुआ है। जंगली जानवरोंका मल और उसके निकासस्थानको देखकर निश्चितरूपसे उनके स्वास्थ्यका पता लगाया जा सकता है। यही पहचान मनुष्यके लिए भी है। विल्कुल नीरोग मनुष्यको शौचके लिए जलकी कोई जरूरत नहीं होती। मलद्वारपर मल जरा भी नहीं लगता। जहां मल इस सूरतमें आता है वहां यह सवाल ही फजूल है कि मल कितना और कै वार आता है। नीरोग शरीर आवश्यकतानुसार इसका प्रवंध खुद कर लेता है। वच्चोंपर, जवानोंपर तथा सव तरहके लोगोंपर वहुत वार आजमाइश करनेके वाद मैं इस निश्चयपर पहुंचा हूं। कभी यह पहचान गलत नहीं निकली। ऐसी संपूर्ण शुद्ध पाचन-शक्तिवाला मनुष्य निस्संदेह दावेसे कह सकता है कि मैं नीरोग हूं। उसका समस्त शरीर निर्दोष माना जायगा। शरीरमें कहीं जरा भी रोग होनेकी दशामें मेदेपर उसका कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़े विना नहीं रहता। हम विना कुछ और जांचे

ऐसे पूर्ण नीरोग मनुष्यके लिए यह कहनेको तैयार हैं कि वह अपना जीवन स्वाभाविक और उचित रीतिसे विताता है। पर ऐसे मनुष्योंके मिलनेमें कठिनाई है।

: ३ :

अपचके कारण और परिणाम

इसमें संदेह नहीं कि अपच अस्वाभाविक रहन-सहनका नतीजा है। लोगोंमें ज्यों-ज्यों चटोरपन—तेज़ मसाले, झोलदार, चरपरी चीजें तथा मांस-मदिराकी लत बढ़ती जाती है त्यों-त्यों पाचन-शक्ति भी बिगड़ती जाती है। आज हमें अपने पूर्वजोंका सीधा-सादा, सात्त्विक आहार पसंद नहीं आता। जबतक थालीमें कई चटपटी चीजें, भांति-भांतिके खूब खट्टे-मीठे पदार्थ न हों तबतक हमारी रसना तृप्त नहीं होती। पाचनें-द्रियोंपर एक ओर तो इस तरह बोझ डाला जाता है दूसरी ओर चीजोंके सत निकाल-निकालकर और उन्हें अनेक ऐसे रूपोंमें बदलकर पेटमें पहुंचाया जाता है कि उसे पचानेमें मेदेको अधिक मेहनत न पड़े।

जैसे शरीरके अन्य अंगोंसे शक्तिसे बाहर अथवा कम काम लेनेसे वे कमजोर हो जाते हैं, वही हालत मेदेकी भी होती है। मेदेकी निर्बलता और

विकार इतने धीरे-धीरे बढ़ते हैं कि ये उन आदमियों-की आदतमें दाखिल हो जाते हैं। उन्हें ऊपरसे जरा भी नहीं अखरते; पर इसका परिणाम बहुत बुरा होता है। अगर मेदेपर किये गए अत्याचारोंका असर धीरे-धीरे न होकर शराबके नशेकी तरह तत्काल होता तो मनुष्य शीघ्रतासे उसे दूर करनेका उपाय भी करता। बेचारे मेदेपर बचपनहीसे अत्याचार होने शुरू हो जाते हैं। जिन्हें बचपनमें माताका दूध न मिलकर कृत्रिम मिलावटी आहार मिलता है उनके मेदेकी दुर्दशा उसी समयसे आरंभ हो जाती है। स्त्रीका अपने बच्चेको दूध न पिला सकना, कम दुर्भाग्यकी बात नहीं है। इससे स्त्रीका रोगी होना साफ साबित होता है। पर कृत्रिम आहारसे मेदेका बिगड़ना तो बादकी बात है, अधिकतर बच्चे तो पेटसे ही बीमार पैदा होते हैं। रोगी माता-पिताकी संतान नीरोग कहांसे होगी ? बुरे बीजसे अच्छे फल कैसे होंगे ?

हमें पहले इस विषयपर जरा विचार करना चाहिए और तब शरीरसे विकारोंको दूर करनेके उपायपर।

शरीर अप्राकृतिक भोजनको शत्रुके समान समझता है और जल्दी-से-जल्दी उसे बाहर निकालनेकी कोशिश करता है। यह प्रयत्न कभी कै, कभी दस्त और कभी

अन्य रूपोंमें प्रकट होता है। यदि शरीर इसे तत्काल इस तरह न निकाल सका तो कम-से-कम वह भोजन विना पचे ही वाहर निकल जाता है और अपने साथ हितकर भोजनके अंशको भी अधपची हालतमें निकाल लाता है। गलत और हितकर, दोनों तरहकी खुराकके अंश एकसाथ वड़ी आंतमें पहुंचते हैं। इससे मनुष्यको उस हितकर भोजनके अंशका कुछ लाभ नहीं मिलता। ऐसा अंश पेटसे प्रायः प्राकृतिक रीतिसे निकल जाता है। पर न निकलनेकी हालतमें रक्तमें मिलकर शरीरमें जमा होता है। एकाध वार तो मनुष्य इन वुरे परिणामोंके भोगनेसे वच भी जाता है। पर मनुष्य स्वाभाविक नियमोंको वार-वार भंग करनेवाला प्राणी है। वड़े खेदकी वात है कि वह प्रायः नित्य ही इन नियमोंका उल्लंघन करता है।

: ४ :

विजातीय द्रव्य

शरीरमें वहुत दिनोंतक अप्राकृतिक भोजन तथा अपचे भोजनके निकालते रहनेकी ताकत नहीं रह जाती। तव शरीरमें विजातीय द्रव्य जमा होने लगता है। आरंभमें विजातीय द्रव्य पेड़ूके पास,

मल-मूत्र-त्यागके स्थानोंके निकट इकट्ठा होता है। फिर उसमें नित्य नया विजातीय द्रव्य मिलकर उसकी मात्रा बढ़ती रहती है और शीघ्र ही अंदर-ही-अंदर उसमें एक परिवर्तन होने लगता है। उसके रेशे बिखरने लगते हैं और उनमें प्रकोप, या कहिए सड़न, पैदा हो जाती है। विजातीय द्रव्य घुलकर शरीरमें ऊपर तथा नीचेके हिस्सोंमें फैलता है और धीरे-धीरे शरीरके भिन्न-भिन्न हिस्सोंमें जमा हो जाता है। यह द्रव्य पेड़ूसे ऊपर सिरतक और दूसरी ओर हाथ और पांवकी सीमातक, पहुंचे बिना नहीं रुकता। उस समय शरीर इसे हर कोशिशसे बाहर निकालना चाहता है, पर अधिक कालतक वह इस क्रियामें समर्थ नहीं होता। इस कोशिशमें शरीरपर बहुत ज्यादा पसीना आता है, फोड़े-फुंसियां आदि अन्य क्रियाएं होती हैं। शुरूमें यह सदा हाथ-पैरोंमें होती हैं। पांवका पसीजना—जिसके संबंधमें इतना अधिक मतभेद है—दरअसल शरीरकी सफाईके लिए ही होता है। वास्तवमें यह रोगका लक्षण है। लेकिन इसे कृत्रिम उपायोंसे रोकनेका फल केवल यह होगा कि शरीरमें अव्यवस्था बढ़ेगी। शरीरको उत्तेजित करने-वाली घटनाएं, जैसे आकस्मिक ठंड, बाहरी चोट, प्रबल

मनोविकार इत्यादिका नतीजा प्रायः यह होता है कि शरीर, अंगोंके सिरोंपर जमा हुए विजातीय द्रव्यको उसके उत्पत्ति-स्थानकी ओर वापस भेजने लगता है। उस समय वह द्रव्य प्रायः जोड़ोंके पास आकर रुक जाता है। यह सूजनका कारण होता है, जो उपर्युक्त कारणोंसे सदा जोड़ोंसे नीचेकी ओर ही प्रकट होती है। हम गठियाके किसी भी रोगीमें यह दशा देख सकते हैं।

जिन अंगोंमें विजातीय द्रव्य जमा रहता है वे अपना स्वाभाविक कार्य उचित रूपसे पूरा नहीं कर सकते। वहां रक्तप्रवाहमें रुकावट होने लगती है और इससे शरीरका पूरा पोषण नहीं हो पाता। जहां विजातीय द्रव्य बहुत ज्यादा जमा हो जाता है वह अंग छूनेपर ठंडे जान पड़ते हैं। उनमें गर्मी लाना बहुत मुश्किल हो जाता है। पहले-पहल शरीरके अग्रभाग—हाथ-पैर ठंडे होते हैं, पर जल्दी ही दूसरे अंगोंके हिस्सोंमें भी इसका असर होने लगता है।

: ५ :

आकृति परिवर्तन

साथ ही, विजातीय द्रव्यके कारण शरीरकी आकृति-में एक अस्वाभाविक परिवर्तन हो जाता है। पर

यह प्रायः हर आदमीमें होनेकी वजहसे अधिकांश मनुष्योंको इसमें कोई आश्चर्य नहीं होता। इन परिवर्तनोंसे ही मनुष्य मालूम कर सकता है कि उसके शरीरमें विजातीय द्रव्य कितना अधिक जमा हुआ है। लेखकके 'आकृति-विज्ञान'की यही नींव है। गर्दन और चेहरा ही ऐसे अंग हैं जिनमें जरा भी परिवर्तन होनेपर ताड़ना संभव है। पर इस प्रकार देखकर पहचानना और उससे परिणाम निकालना केवल उसी मनुष्यके लिए संभव है जिसने बहुत दिनोंतक इस विषयका ध्यान देकर मनन किया हो। यहां हम शरीरके बिल्कुल नीरोग होनेके चिह्नकी बातपर पाठकोंका ध्यान फिर आकर्षित करते हैं। जब इस चिह्नसे यह जान लिया गया कि शरीर नीरोग है, तब पाचनेंद्रियोंमें सड़े हुए पदार्थकी उपस्थितिकी शंका ही नहीं की जा सकती। और उनमें नहीं तो फिर शरीरमें नहीं है; क्योंकि उन विकृतियोंका प्रारंभ तो वहींसे होता है। लेकिन उस चिह्नसे यदि यह शरीर नीरोग न जान पड़े तो हमें सबसे पहले शरीरकी आकृतिके परिवर्तनसे पता लगाना चाहिए कि शरीरमें विजातीय द्रव्यकी मात्रा कितनी है। कभी-कभी तो विजातीय द्रव्य इस रूपमें होता है कि हर कोई उसे

देख सकता है, जैसे गांठों, गिल्टियों इत्यादिके रूपमें। ये गांठें आदि शरीरकी आकृतिके अन्य परिवर्तनकी भांति ही शरीरको भीतरसे बिल्कुल साफ कर देनेके बाद अपने आप लुप्त हो जाती हैं। पर उन्हें कृत्रिम उपायोंसे दूर करनेकी चेष्टा करनेपर शरीरको हानि पहुंचती है। कारण, उस दशामें वहांका विजातीय द्रव्य शरीरके दूसरे भागमें चला जाता है।

: ६ :

जीर्ण तथा तीव्र रोग

जिस मनुष्यके शरीरमें विजातीय द्रव्य भरा है उसे जीर्ण रोगोंके चंगुलमें फँसा ही मानना चाहिए। जिसमें जितना अधिक विजातीय द्रव्य है वह उतना ही अधिक रोगग्रस्त है। विजातीय द्रव्यके संग्रहके, एकके बाद एक होनेवाले परिणामसे, रोगीको अपने शरीरकी स्थितिका वास्तविक ज्ञान होने लगता है।

विजातीय द्रव्य प्रकुपित होनेवाली वस्तु है, पर इस प्रकोपका शीघ्र अथवा देरसे आरंभ होना बाहरी दशाओंपर निर्भर है। ऋतु-परिवर्तन, प्रकुपित होनेकी शक्ति रखनेवाला भोजन, अथवा अन्य कारणोंसे प्रकोप-का आरंभ हो सकता है। शरीरमें विजातीय द्रव्यकी

अधिकता होनेपर यह प्रकोप सारे शरीरमें या शरीरके अधिकतर हिस्सेमें फैल जा सकता है। प्रकोपसे गर्मी उत्पन्न होती है। प्रकोपकी क्रिया चारों ओर होनेपर सारे शरीरको इस गर्मीका अनुभव होता है। इसीको लोग बुखारकी गर्मी कहते हैं। प्रकुपित होनेपर जब विजातीय द्रव्य तेजीसे फैलता है तो शरीर यथाशक्य उसे बाहर निकालनेमें पूरी कोशिश करता है। विजातीय द्रव्य निकालनेके इस शारीरिक प्रयत्नका नाम ही बुखार है। इसलिए शरीरमें प्रकोप-क्रियाके कारण होनेवाला प्रत्येक तीव्र ज्वर शरीरकी पुनः स्वास्थ्य-प्राप्तिकी चेष्टा है। ऐसे ही ज्वर-संबंधी विकार तीव्र रोग कहलाते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि शरीरके अपने प्रयत्नमें सफलता प्राप्त करते ही ज्वर अपने आप दूर हो जायगा। ज्वरके दूर करनेका यही एकमात्र प्राकृतिक उपाय है। यदि ज्वरको कृत्रिम रीतिसे दबा दिया जाय तो प्रकुपित होनेवाला पदार्थ शरीरके भीतर ही रह जाता है और शरीरमें जीर्ण रोगोंकी जड़ अधिक दृढ़ हो जाती है।

प्रिय पाठक, क्या आपने कभी इस ओर ध्यान दिया है कि आपका एक दोस्त तो ज्वरके बाद अपनेको अधिक तंदुरुस्त बतलाता है और दूसरा ज्वरसे कम-

जोरीकी शिकायत करता है ? यह क्यों ? इसलिए कि पहले उदाहरणमें तो ज्वरको शरीरके भीतर जमा हुआ कूड़ा निकालनेमें सफलता मिली, और दूसरेमें नहीं। आशा है, अब पाठकको इन दो परस्पर विरुद्ध दिखाई देनेवाली बातोंके समझनेमें कोई उलझन न होगी।

: ७ :

ज्वर और उसके रूप

ज्वरके भिन्न-भिन्न बाहरी रूपोंके आधारपर उसके अनेक नाम पड़ गये हैं। इसी तरह बच्चोंपर आक्रमण करनेवाले रोगोंके भी अनेक नाम रखे गये हैं। बच्चोंके शरीरमें सफाईका काम करनेकी शक्ति अधिक रहती है, इसीलिए खसरा, लालज्वर, चेचक (शीतला) इत्यादि जैसे रोगोंसे उनके शरीरकी सफाई हुआ करती है। हैजा, टाइफस और पेचिश भी ऐसे ही रोगोंमेंसे हैं। जैसा पहले कह आये हैं, इन सबकी उत्पत्तिका कारण एक ही है। पर इनका भिन्न-भिन्न रूप कई बातोंपर निर्भर है। विशेषकर इस बातपर कि शरीरके सफाईके स्वाभाविक मार्गोंके निकट विजातीय द्रव्य कितना कम या ज्यादा इकट्ठा हुआ है।

प्रायः मोटे आदमियोंको तीव्र ज्वर न होनेका क्या

कारण है ? यही कि उनका शरीर विजातीय द्रव्यको जमा करता रहता है। पसीने तथा दूसरे मार्गोंसे थोड़ा ही हिस्सा निकल पाता है । ऐसे लोग प्रायः अपने अच्छे स्वास्थ्यपर अभिमान करते हैं, क्योंकि धीरे-धीरे इकट्ठे होनेवाले पदार्थसे उन्हें तकलीफ नहीं होती । लेकिन आगे चलकर दवाद्वारा दवाये हुए ज्वरवाले मनुष्योंके समान ही इनकी भी गति होती है। वह हालत जल्दी फूट निकलनेवाली वीमारियोंकी अपेक्षा अधिक भयंकर होती है ।

: ८ :

अन्य विकार

इस विजातीय द्रव्यके संग्रहसे क्रमशः कष्टकर विकार उत्पन्न होते हैं—सिर-दर्द, जुकाम, खांसी, दंतविकार तथा अन्य दुःखदायी रोग आरंभ होते हैं। जीवन भार हो जाता है। धीरे-धीरे स्नायुसंवंधी विकार वढ़कर सताने लगते हैं। शरीरका कोई-कोई हिस्सा तो विलकुल नष्ट हो जाता है । दांत खराव, वाल सफेद या सिरमें गंज हो जाती है । आंखों और कानोंमें अपना काम अच्छी तरह करनेकी शक्ति नहीं रह जाती, अंधे और वहरेपनतककी नौवत आ जाती

है। हाथ-पैर, जिनमें विजातीय द्रव्य अधिकतर जमा होता है, ठंडे रहने लगते हैं इसके बाद प्रायः गठियाका नंबर आता है। पाचन-शक्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती है। कभी कब्ज और कभी पतले दस्त आने लगते हैं। ये दोनों भीतरी गर्मीके चिह्न हैं। प्रकोपकी सारी क्रियाओंसे आंतोंमें गर्मी बढ़ जाती है और मल बाहर निकालनेमें सहायक, आंतोंमें रहनेवाला चिकना पदार्थ सूख जाता है, और इसीसे कब्ज हो जाता है। जब कभी शरीर-शुद्धिकी क्रियाका जोर होता है तो बिना पचे पदार्थ शरीरसे पतले दस्तोंके रूपमें बाहर निकलते हैं। इसीको अतिसार कहते हैं।

रोग पैदा होनेके कारण यही हैं। रोगोंके अलग-अलग नाम गिनाये जा सकते हैं, लेकिन उनसे किसीको कुछ फायदा न होगा। आगे हम केवल फेफड़ेके प्रसिद्ध तथा भयंकर रोगों और उनकी उत्पत्तिके कारणों-पर ही विचार करेंगे।

: ६ :

फेफड़ोंके रोग

दूसरी इंद्रियोंकी भांति फेफड़ोंमें रोगका प्रारंभ प्रकुपित होनेवाले पदार्थ जमा हो जानेपर ही होता है।

इन पदार्थोंके निकासमें रुकावट पैदा होनेपर फेफड़ोंका नाश होने लगता है। पेड़ूकी ओरसे आनेवाला प्रकुपित हुआ पदार्थ पहले फेफड़ोंसे होकर ऊपरकी ओर जाता है और कंधोंके नीचे फेफड़ोंके ऊपरी सिरोंमें जाकर रुकता है। इससे आगे सिर या हाथकी ओर जानेमें असमर्थ होनेके कारण फेफड़ोंके सिरोंमें रगड़ और प्रकोप पैदा करता है। परिणामस्वरूप विकृत पदार्थका यह प्रकोप बहुत तेज हो जानेपर फेफड़ोंका नाश आरंभ कर देता है। इससे यह सिद्ध होता है कि रोग सदा फेफड़ोंके अग्रभागमें आरंभ होता है।

हर आदमी अपने फेफड़ोंकी ठीक दशाका अंदाज कर सकता है। जब फेफड़े नीरोग रहते हैं तब हम मुंह बंद रखकर नाकसे सांस लेते हैं। जब कभी हमें मुंहसे सांस लेनेको विवश होना पड़े तो समझ लेना चाहिए कि इसका कारण नाक या फेफड़ोंकी कोई खराबी है। नाकके रोगोंकी पहचान बहुत सहज होनेके कारण हम सांस लेनेकी रीतिका निरीक्षण करके फेफड़ों-की दशाका निर्भ्रांत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। सांसके साधारण रूपमें चलनेकी दशामें केवल इतना ही ध्यान देनेकी जरूरत है कि हम अपना मुंह बंद रख सकते हैं या नहीं। और इससे भी अच्छी परीक्षा यह होगी कि

हमारी नींदकी दशामें दूसरा आदमी देखे कि हमारा मुंह खुला रहता है या बंद। इसके सिवा मुंहके कम या ज्यादा खुले रहनेपर भी बीमारीकी क़मी या अधिकताका निःसंशय ज्ञान हो सकता है। दीर्घजीवी मनुष्य प्रायः चलते समय अपना मुंह बंद रखते हैं। उनके बड़ी उम्र पानेका कारण यही है कि उनके फेफड़े नीरोग होते हैं और उनका साधारण स्वास्थ्य अच्छा रहता है। जब उन्हें सांस लेनेमें कठिनाई होने लगे तो समझ लीजिए कि अब उनके दिन पूरे हो चले।

क्षणभरके लिए भी यह मत मानिये कि मुंहका खुला रहना सिर्फ एक आदत है। यह दशा सदा किसी-न-किसी रोगकी सूचक होती है और बिना इस रोगके दूर हुए, कोशिशके बिना मुंह बंद नहीं रखा जा सकता।

यदि हम लड़कियोंपर इस बातकी परीक्षा करें तो हम प्रत्येक लड़कीके संबंधमें यह जान सकते हैं कि वह पवित्र मातृ-कर्त्तव्य, अर्थात् स्तनोंसे बच्चोंको दूध पिलानेके योग्य है या उसके योग्य होनेके लिए उसे पूर्ण चिकित्साकी आवश्यकता है। रोगी फेफड़ेवाली स्त्रियां बहुत कम अपने बच्चोंको दूध पिलाने योग्य होती हैं। दूध पिलानेकी अयोग्यताका, लोग चाहे जो कारण समझते रहें, लेकिन मुख्य कारण यही है।

: १० :

रोगोंकी जड़ एक है

उपर्युक्त बातोंके आवश्यक परिणाम बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं और रोगियोंकी चिकित्सा इन्हींपर निर्भर है। समग्र भीतरी रोगोंका (सिवा बाहरी चोटोंके) केवल एक ही कारण है, और सच पूछा जाय तो रोग भी एक ही है, जो तरह-तरहके रूपोंमें प्रकट होता है। यह हमारे अनुसंधानका महत्त्वपूर्ण फल है, जिसकी सत्यता आगे चलकर अकाट्य प्रमाणोंसे सिद्ध की जायगी। विज्ञानमें किसी कथनकी सचाई-झुठाई जांचनेके लिए एक सिद्ध कसौटी है—परीक्षा और नियमानुसार खोज। यदि सब रोगोंकी जड़ एक ही है तो उन सबकी चिकित्सा भी, यदि आविष्कृत हो सके तो, मुख्य बातोंमें एक ही होनी चाहिए। इसलिए यदि हम सब बीमारियोंको दूर कर सकनेवाली एक ही चिकित्सा निकाल सकें, जिसमें मनुष्य-विशेषके लिए केवल थोड़ा-सा हेरफेर करना पड़े तो, हम जो चाहते हैं वह प्रमाण मिल जायगा। सौभाग्यसे ऐसी चिकित्सा प्रायः अपने आप आविष्कृत हुई है।

: ११ :

रोग दूर कैसे हो सकते हैं ?

वास्तवमें तो शरीर अपनी चिकित्सा आप करता है, हमारा काम तो सिर्फ इतना ही होना चाहिए कि हम सब बातोंका ऐसा सिलसिला बिठा दें कि उसे आरोग्य-प्राप्तिमें सफलता मिले। इस दृष्टिसे हमारा काम सिर्फ इतना ही रह जाता है :

(१) शरीरमें प्रकुपित होनेवाले नवीन पदार्थ न जाने देना।

(२) ऐसे पुराने पदार्थको बाहर निकालना।

इसके लिए हमें करना यह चाहिए :

(१) अपना जीवन प्राकृतिक नियमोंके अनुसार बिताना।

(२) इस ओर ध्यान रखना कि शरीरकी गंदगी निकालनेवाली इंद्रियां अपना काम मजेमें कर सकें।

: १२ :

प्राकृतिक आहार क्या है ?

सब प्रकारके रोगियोंके लिए किसी एक ही तरह-

का भोजन नहीं बतलाया जा सकता। प्राकृतिक भोजनों-मेंसे रोगीकी दशाके अनुसार कोई भोजन चुन लेना चाहिए। किसी खाद्य या पेय पदार्थसे डकार आनेपर समझना चाहिए कि मेदा उसे स्वीकार नहीं करता। जबतक शरीर स्वीकार न करने लगे उस वस्तु को ग्रहण नहीं करना चाहिए। स्वास्थ्य चाहनेवालोंको अपना एक मूल सिद्धांत बना लेना चाहिए कि मेदेपर कभी ज्यादा बोझ न डालें—ठूंसकर न खायं। इससे पूरा पाचन नहीं हो पाता और अधूरा पचा हुआ आहार शरीरके लिए सिर्फ कूड़ा है। पुराने रोगीका पेट प्रायः निकल आता है, इसका कारण पेय पदार्थों-का अधिक प्रयोग है अथवा पेटमें विजातीय द्रव्यका प्रकोप। ऐसे मनुष्योंको अपने भोजनका अंदाज नहीं रहता। उन्हें चाहिए कि कभी उचित परि-माणसे अधिक भोजन न करनेका पूरा खयाल रखें या दूसरा कोई उनपर निगाह रखनेवाला होना चाहिए।

भोजनके ठोस होनेपर सबसे ज्यादा खयाल रखना चाहिए। जो चीजें निगलनेके पहले खूब चबानी पड़ती हैं वे तरल या मुलायम भोजनकी अपेक्षा हमेशा जल्दी और आसानीसे पचनेवाली होती हैं। खूब चबाने-

से ही भोजनमें मुंहकी लार उचित परिमाणमें मिलती है और यही भोजनको पचाने योग्य वनाती है। इसी कारण वे सब आहार जिन्हें हम उनकी असली, विना वदली, अवस्थामें खा सकते हैं, वहुत जल्द पचते हैं और हमारे शरीरके लिए वहुत हितकर होते हैं। सारे पकाये हुए भोजन पचनेमें भारी होते हैं। पर भोजन कोई भी हो, उसे खूव चवाना वहुत जरूरी है।

: १३ :

शरीरके कूड़ेकी सफाई

अव हम शरीरमें जमा हुए कूड़ेको निकालने तथा विलकुल सफाई होनेतक इस क्रियाको जारी रखनेके संवंधमें वतलाना चाहते हैं

शरीरमें मल निकालनेवाली चार मुख्य इंद्रियां हैं—फेफड़े, त्वचा (चमड़ा), गुदा (पैखानेका स्थान) और मूत्रेंद्रिय।

शरीरकी गंदगी निकालनेके लिए इन सवसे पूरा काम कराना चाहिए।

फेफड़े—यह अपना काम शरीरमें अच्छी हरकत होनेपर ही कर सकते हैं। पूर्ण नीरोगताके लिए, खुली हवामें पूरा व्यायाम करना आवश्यक है। विजातीय

द्रव्य खत्म होने लगनेपर रोगी आसानीसे अपने आप गहरी सांस लेने लगता है ।

त्वचा—चमड़ेकी तहके पास जमा हुई गंदगी निकालना ही त्वचाका मुख्य काम है ।

जबतक यह काम नियमित रूपसे होता रहता है तबतक किसी भयंकर बीमारीकी आशंका नहीं की जा सकती । लेकिन विजातीय द्रव्यके कारण रक्त-संचालनमें बाधा पड़नेसे त्वचाके कार्यमें शिथिलता आ जाती है । उस समय छूकर देखनेसे त्वचा सदा ठंडी जान पड़ती है । स्पर्श-वृत्ति हमें बतलाती है कि यह स्थिति अप्राकृतिक है, क्योंकि शरीरके ठंडे अंगोंको छूना अच्छा नहीं लगता । हमें इस प्रकार शिथिल हुई त्वचामें गर्मी पहुंचाकर उसमें फिरसे काम करनेकी ताकत पैदा करनी चाहिए । जीवोंके बढ़नेके लिए गर्मी और ठंडक दोनों आवश्यक हैं । त्वचापर भी इन दोनोंका बड़ा अच्छा असर पड़ता है । इनसे उसके छिद्र खुल जाते हैं और वह काम करने लगती है । भापमें ये दोनों गुण हैं । हमारी तात्पर्य-सिद्धिके लिए वाष्प-स्नानसे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है । सही तौरसे लेनेपर वाष्प-स्नानसे त्वचामें काम करनेकी ताकत आ जाती है ।

छोटे बच्चोंके लिए एक इससे भी अधिक स्वाभा-

विक उपाय है । आपने देखा होगा कि ठंडक लगनेपर बच्चे मांसे चिपटना चाहते हैं । बच्चोंमें माताके शरीरकी गर्मीसे अपना बदन गर्म करनेकी बड़ी इच्छा रहती है । उन्हें ऐसा करना भी चाहिए । यह स्वाभाविक बात कुछ नये खयालवालोंको बेढंगी मालूम होगी । पर जिस माताके हृदयमें पवित्र और स्वाभाविक मातृ-प्रेमका निवास है, वह अपने बच्चेको साथ सुलाने और अपने शरीरकी गर्मी पहुंचानेका कार्य बड़ी प्रसन्नतासे करेगी । बच्चेका खसरा, लालज्वर, डिप्थीरिया-जैसे तीव्र रोग भी उसे भयभीत न कर सकेंगे । इस स्वाभाविक चिकित्साका आश्चर्यजनक फल होता है । वास्तवमें बच्चोंको अगर मांके शरीरसे उचित गर्मी मिलती रहे तो उन्हें रोग बहुत कम सतायेंगे । ग्रंथकर्ता जानता है कि यह मत प्रकट करना कितने ही लोगोंके कुसंस्कारोंका विरोध करना है; लेकिन इस एक कारणसे सचाई पर पर्दा नहीं डाला जा सकता । इस उपयोगसे अकथनीय लाभ लिया जा सकता है । बराबर देखा जाता है कि स्वाभाविक जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्य इस विषयमें हमारी अपेक्षा, मातृ-कर्तव्यको विशेष रूपसे समझते हैं । पशुओंकी ओर ध्यान दीजिए, मुर्गी तथा पालतू चौपायोंको देखिए, वे कितने प्रेमसे अपने शरीर-

द्वारा अपने वच्चोंको गर्मी पहुंचाते हैं। लेकिन हां, इस कामके लिए स्वयं मातामें यथेष्ट गर्मी होनी चाहिए। यदि उसीके शरीरमें गर्मी लानेके लिए वाहरी उपायकी आवश्यकता हो तव तो वह अपने वच्चेका पालन क्या करेगी ? वच्चेको असली लाभ तो मातृ-स्नेहसे ही मिल सकता है, पर जिन वेचारोंको यह नसीव न हो उन्हें हल्का भाप-नहान देना चाहिए।

आंत, गुर्दा—मल-मूत्रके इन दोनों भीतरी स्थानोंपर वाष्प-स्नानका असर पड़ता है। पर इसके सिवा उन्हें विशेष प्रभावशाली प्रयोगकी आवश्यकता होती है। भीतर प्रकुपित होनेवाले द्रव्य अधिकतर उन्हीं मार्गोंसे निकलते हैं। दूसरे अंगोंकी अपेक्षा वहुत करके वहीं जमा रहते हैं। इससे वहां प्रायः कुछ-न-कुछ जलन वनी रहती है। इसलिए वड़ी होशियारीसे उन दोनोंमें ठंड पहुंचानेकी जरूरत है। इसका सवसे सहज और उत्तम उपाय उदर-स्नान या मेहन-स्नान है। विजातीय द्रव्यको वाहर निकालनेके लिए उदर-स्नानके समय उन द्वारोंके यथासंभव निकट स्थानको कपड़ेसे रगड़ना पड़ता है। पर, क्रिया पानीके भीतर ही करनी चाहिए। इससे प्रायः फुंसियां हो जाती हैं, जिनके द्वारा विजातीय द्रव्य साधारण कालकी अपेक्षा अधिकतासे

बाहर निकलता है। जब-जब उपर्युक्त स्थानोंमें गर्मी मालूम हो ऐसे स्नान लेने चाहिए। संभव है, कभी-कभी एक दिनमें तीन-तीन, चार-चार बार लेने पड़ें, और किसी-किसी दशामें एक-एक घंटातक लेने पड़ें। इसके लिए नदीका जल सर्वोत्तम होता है; क्योंकि यह जमे हुए मलको जल्दीसे ढीला कर देता है। अगर भारी जल मिले तो व्यवहार करनेके पूर्व उसे कुछ देर पड़ा रहने देना चाहिए।

इन स्नानोंके शुरू करते ही अद्भुत फल होता है। दस्त ठीक आने लगता है। कभी-कभी तो ऊपर वर्णन किये अनुसार बंधा हुआ, गुदामें बिलकुल लगा न रहनेवाला मल निकलता है। कारण, इन स्नानोंसे आंतोंका संचित प्रकुपित होनेवाला पदार्थ बाहर निकल जाता है। लेकिन शरीरकी पूरी सफाई न हो लेनेतक नया विकारी द्रव्य जमता जाता है। इसीलिए पूर्ण नीरोग होनेतक इस चिकित्साको जारी रखना चाहिए। चिकित्सा कितने दिन करनी चाहिए यह शरीरमें जमे हुए विकारी द्रव्यकी मात्रा तथा स्नानोंके प्रभावपर निर्भर है। हफ्तोंतक और कभी-कभी महीनों या वर्षोंतक करनी पड़ती है। जो मनुष्य जन्मके साथ ही रोग लाते हैं उनकी चिकित्सामें सबसे अधिक समय लगता है। पर उन नवयुवकोंपर,

जो थोड़े ही दिनोंसे रोगके पंजेमें फंसे हैं, इसका असर वहुत ही जल्द होता है। चिकित्सा आरंभ करनेपर प्रायः उपर्युक्त ज्वरोंमेंसे कोई एक फूट निकलता है। इससे सफाईका काम वड़ी तेजीसे होता है। इसका इलाज भी ठीक उसी ढंगसे करना चाहिए। उस समय, विशेषकर त्वचाको शीघ्र काममें लगानेकी चेष्टा करनी चाहिए। पसीना निकलते ही ज्वर तत्काल लोप होने लगता है। हम कह आये हैं कि ज्वर पुनः स्वास्थ्य-लाभकी चेष्टा है। विकारी द्रव्योंका वाहर निकालना इसका उद्‌देश्य है। विकारी द्रव्य वाहर निकलनेपर भीतरी प्रकोप, और साथ ही गर्मी भी दूरहो जाती है। हठी और नासमझ मनुष्य विना आजमाये ही कह वैठते हैं कि वाष्प-स्नानसे गर्मी वढ़ती है। मैं कहता हूं, एक वार आजमाकर देखिए तो मालूम हो जायगा कि वात विलकुल उलटी है। लेकिन इस वातपर फिर ध्यान दिलानेकी आवश्यकता जान पड़ती है कि छोटे वच्चोंकी दशामें तो पसीना लानेके लिए माताकी गर्मी ही सर्वोत्तम उपाय है। इसलिए माताको अपने शरीरकी गर्मी पहुंचाकर वच्चेकी जीवन-रक्षा करनी चाहिए। प्रत्येक तीव्र रोगमें रोगीको काफी पसीना लाना ही हमारी पहली चेष्टा होनी चाहिए। इस वातपर भी समान

रूपसे ध्यान देना चाहिए कि अन्य विकारी द्रव्य निकालनेवाली इंद्रियां भी अपना कार्य उचित रूपसे करती रहें। इसीलिए ज्वरमें उदर-स्नान और मेहन-स्नान वारंवार देनेकी आवश्यकता पड़ती है।

ज्वरोंमें डिप्थीरिया शायद सबसे भयंकर गिना जाता है। बच्चोंके लिए तो यह काल-रूप ही समझा जाता है। शरीरमें विजातीय द्रव्यके अधिक मात्रामें एकत्र हो जानेपर, और सिरमें रुकावट पाकर लौटते समय सांसकी नली तथा फेफड़ोंमें विशेष रूपसे जमा हो जानेके कारण, बच्चोंपर डिप्थीरियाका आक्रमण होता है। त्वचाके अपना काम प्रायः बंद कर देनेपर ही विजातीय द्रव्यका इतना जमाव होना संभव है। इस लक्षणसे, सावधान माता-पिता पहलेसे ही बच्चेपर होनेवाले ज्वरके आक्रमणको जान लेंगे। डिप्थीरिया-रोगीके शरीरकी उपमा एक ऐसी बोतलसे दी जा सकती है जिसमें प्रकुपित होनेवाला—खमीर उठनेवाला—तरल पदार्थ भरा हो; उसमें उफान शुरू होनेसे विकारी द्रव्य बोतलके सिरेकी ओर जाना चाहता है, क्योंकि बोतलकी चहारदीवारी उसे बाहर नहीं जाने देती। यही हालत डिप्थीरिया रोगीकी भी होती है। डिप्थीरियाके साथ ही प्रायः लालज्वर भी हो सकता है, क्योंकि प्रकोप सारे शरीरमें

फैल जाता है। ऐसा होना लाभदायक है। इससे कूड़ा वाहर निकलनेमें त्वचासे भी सहायता मिलती है। ऊपर लिखे अनुसार पसीना लानेका उपाय जरूर करना चाहिए। संभव है वच्चेको पसीना लानेके लिए माताको घंटों उसके साथ विस्तरोंमें लेटनेकी जरूरत पड़े। यह संभव न हो तो वाष्प-स्नान देना चाहिए। उदर-स्नान या मेहन-स्नान भी वारी-वारीसे नीरोग न होनेतक देना चाहिए। डिप्थीरियामें प्रायः रोगीका दम घुट जाता है। हमें इसे रोकनेकी चेष्टा करनी चाहिए। इस भयका कारण जीभपर जमी हुई सफेदी है। पर गलेकी जलन-को वंद कर सकनेसे रोगी जरूर वच जायगा। जीभपर जमी हुई सफेदी दूर करनेके लिए रोगीको मुंहमें ठंडा पानी भर रखना चाहिए। मुंहमें उस पानीके गर्म हो जानेपर फिर ठंडा पानी भर लेना चाहिए। यहां-तक कि सफेदी विलकुल दूर होनेतक यह उपाय जारी रखना चाहिए। इससे रोगीको प्रत्यक्ष लाभ मालूम होगा। रोगीको इस तरह लेटना चाहिए कि पानी मुंहके भीतरतक पहुंच सके और सफेदी अच्छी तरह धुलती रहे।

यह चिकित्सा वहुत छोटे वच्चोंको नहीं दी जा सकती। उनके लिए मेहन-स्नान काफी होगा। उसका

ऐसा अच्छा असर होता है कि एक ही स्नानके बाद सारी सफेदी प्राय: लोप हो जाती है। वर्षाका जल व्यवहार करनेसे तो शीघ्र फल प्राप्त करनेमें बहुत ही कम संदेह रहता है। इसलिए ऐसा जल प्राप्त करनेमें कोई उपाय उठा न रखना चाहिए। उसके अभावमें नदीका जल लेना चाहिए। इसके लानेमें थोड़ा परिश्रम पड़े तब भी कोई हर्ज नहीं। लोग डाक्टरोंके दरवाजे-दरवाजे ठोकर खानेमें भी तो कितना समय बरबाद करते हैं? कुएं या नलके जलको व्यवहार करनेके पूर्व खुली वायु, और संभव हो तो धूपमें, कई घंटे पड़ा रहने देना चाहिए।

: १४ :

कुछ उदाहरण

उपर्युक्त चिकित्सा इतनी बार आजमाई जा चुकी है कि इसकी सत्यता संदेहकी सीमासे परे है। फिर भी, हम इस विषयको अच्छी तरह समझानेके लिए यहां कुछ उदाहरण देते हैं।

(१) एक नौ सालके लड़केपर लालज्वर और डिप्थीरियाका आक्रमण हुआ। बेतकी बुनी कुर्सीपर लिटाकर उसके शरीरमें वाष्प-स्नानद्वारा खूब पसीना लाया गया। फिर ठंडक पहुंचानेके लिए उदर-स्नान-

(हिपवाथ) कराया गया। ठंडे स्नानके प्रभावसे सिर-की गर्मी तथा सांस लेनेमें तकलीफकी शिकायत दूर होनेपर विस्तरेमें लिटाकर ढक दिया गया। इससे फिर उसे स्वाभाविक पसीना आ गया और वाष्प-स्नान न देने पड़े। पर ठंडे स्नान वार-वार देने पड़े। लड़केको विस्तरेमें लिटाते ही उसके मुंहमें ठंडा जल भर दिया गया। इससे प्रकोपके कारण गलेमें जमी हुई कड़ी तह शीघ्र दूर हो गई। एक घंटा भी न लगा होगा। गलेकी जलन भी शीघ्र ही शांत होकर रोगी चंगा हो गया। पांच दिनमें तो वच्चा विलकुल नीरोग हो गया।

(२) एक वीस वर्षके नवयुवकको, जो अपनी तेरह वर्षकी उम्रमें मानसिक विकारोंसे ग्रस्त हुआ था, वड़े-वड़े तजर्वेकार डाक्टरोंने असाध्य कहकर छोड़ दिया था। निस्संदेह उसका विकार पैतृक था। विकारी द्रव्य उसके शरीरमें इस तरह भरे हुए थे कि शरीरकी आकृति विगड़ गई थी। सिर आगेकी ओर झुक गया था, कमर टेढ़ी हो गई थी, स्पर्श करनेपर हाथ-पैर वरावर ठंडे जान पड़ते थे। त्वचाने अपना काम प्रायः वंद कर दिया था। पाचन-शक्ति वहुत खराव हो गई थी। शरीरमें सदा भीतरी ज्वर वना रहता

था। बाहर उसका कोप न होता था। इसकी चिकित्सा खूब अच्छी तरह की गई—भोजन सादा और अनुत्तेजक दिया गया—सवेरे दूध और चोकरदार आटेकी रोटी, दोपहरको साग और उबाले हुए फल, शामको चोकरदार आटेकी रोटी और फल। आरंभमें त्वचाका काम ठीक करानेके लिए उसे हर हफ्ते तीन-तीन, चार-चार वाष्प-स्नान कराये गये। रोज तीन ठंडे स्नान भी कराये गये जो पहले बीस मिनटके और बादको आध घंटेके कर दिये गये थे। हर स्नानके बाद बाहर खुली हवामें घूमने दिया जाता था। इस चिकित्सासे थोड़े ही दिनोंमें उसका हाजमा कुछ सुधरा और चार सप्ताह बाद अपने आप कुछ पसीना आने लगा। आकृतिमें फर्क पड़ने लगा। धीरे-धीरे उसकी मानसिक स्थिति सुधरी, शांति तथा सोचनेकी शक्ति आने लगी। नौ सप्ताहकी चिकित्साके बाद वह कुछ काम करने लायक हो गया। इतने दिनोंमें उसका वजन पांच सेर बढ़ गया था। इस उदाहरणसे यह महत्त्वपूर्ण परिणाम निकलता है कि मानसिक विकारोंका कारण भी शारीरिक विकार ही हैं। शरीर स्वस्थ हो जानेपर वे अपने आप लुप्त हो जाते हैं।

(३) एक १२ सालके लड़केके दाहिने हाथपर

अचानक लकवा मार गया। एक डाक्टरने अपने साधारण नियमानुसार केवल स्थानीय चिकित्सा की, अर्थात् उसने केवल उस हाथको ही रोगी समझा और उतने ही अंशका इलाज किया। नतीजा यह हुआ कि ज्यों-ज्यों दवा की, मर्ज वढ़ता गया। अंतमें मेरे सिद्धांतानुसार वालककी चिकित्सा की गई। निस्संदेह इस लड़केका भी सारा शरीर रोगी था। पर विकारी द्रव्य दाहिने भागमें विशेषरूपसे एकत्र हुआ था और दाहिने हाथमें तो इतनी अधिक मात्रामें इकट्ठा हो गया था कि रक्त-संचार प्रायः वंद होकर लकवा हो गया। वच्चेको सख्त कब्जकी शिकायत थी। इसीसे विकारी द्रव्योंने वहुत थोड़े समयमें ही इसपर अपना असर जमा लिया था। चिकित्सा प्रायः उदाहरण नं० २ के अनुसार की गई। केवल वाष्प-स्नानोंकी उतनी जरूरत न पड़ी, क्योंकि शरीरसे पसीना शीघ्र ही आने लगा। यह विशेष उल्लेखयोग्य वात है कि लकवा मारे हुए स्थानकी कोई अलग चिकित्सा न की गई। फिर भी रोज-रोज लड़केको आराम होता गया। तीन सप्ताहमें हाथ अच्छी तरह काम करने लायक हो गया। लड़केकी माता, जो नित्य वालकको ये स्नान कराते देखती थी, समझ ही न सकी कि यह जादू कैसे हो गया।

(४) एक नवयुवक पादरी भयंकर वात-रोगसे पीड़ित था। उसे अपनी बीमारीका कारण अधिक अध्ययन जान पड़ता था। इससे उसका रोग बढ़ा जरूर था, लेकिन मूल कारण उसके शरीरके विकारी द्रव्य थे। रोगीका शरीर टूट गया था, उसे नीरोग होनेकी कोई आशा न रही थी। इतनी खराबीका कारण यह था कि त्वचाने अपना काम प्रायः बंद कर दिया था। उदाहरण नंबर २ की भांति इसे भी भीतरी ज्वर सदा सताया करता था। पाचन-शक्ति एकदम नष्ट हो गई थी। जो कुछ खाता वह अनपचा, कै द्वारा शरीरसे बाहर निकल जाता था। उसे उदाहरण नंबर २ से भी अधिक सादा भोजन दिया गया। बाकी इलाज बिलकुल वैसा ही किया गया। पहले ही दिनसे पाचन-शक्तिमें सुधार जान पड़ा। फिर कभी कै न हुई। अपने आप तीसरे दिन पसीना आने लगा जिसकी कोई आशा ही नहीं की जाती थी। हां, भलीभांति पसीना लानेके लिए कुछ वाष्प-स्नान अवश्य कराये गये। आठ सप्ताहमें रोगीकी मानसिक तथा शारीरिक स्थिति ऐसी हो गई कि वह अपने काममें लग गया।

(५) दो महीनेके एक शिशुके सिरमें गंजा हो गया था, सिरमें मवाद-सी बहती थी। यह जन्मके

कुछ दिन वाद ही आरंभ हो गई थी। मलहम लगानेसे दशा और भी खराव हो गई थी। वच्चेके पांव छूनेसे ठंडे जान पड़ते थे, इसलिए उसे अंगीठीके पास रखते और विस्तरेमें गर्म पानीकी वोतलें रखी जाती थीं। नतीजा यह होता था कि वच्चा वहुत वेचैन हो जाता था। इस शुष्क गर्मीका दूसरा असर क्या हो सकता था? इस उदाहरणमें शुष्क गर्मीके वजाय वच्चेको माताके शरीरकी गर्मी पहुंचानेसे अद्‌भुत फल हुआ। रातको वच्चा अपनी माताके शरीरकी गर्मीसे गर्म होनेके लिए उसके साथ सुलाया जाता था। पहली ही रातको पसीना आना आरंभ हुआ। धीरे-धीरे पसीना वढ़ता गया। दिनमें दस या वारह मिनटतक एक छोटे वरतनमें ठंडे स्नान कराये जाते थे। इस प्रकारसे वच्चा तीन ही सप्ताहमें विलकुल नीरोग हो गया और फिर उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट होता गया।

इन पांच उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि उपर्युक्त चिकित्साके अनुसार समस्त रोग आराम हो सकते हैं। कोई रोग, चाहे उसका कोई भी नाम हो, इस चिकित्सा-से आराम किया जा सकता है। हां, कुछ रोगी ऐसे होते हैं कि जो शरीरकी जीवन-शक्तिके विलकुल नष्ट हो जानेके कारण पूर्णरूपसे नीरोग नहीं हो सकते।

अब यहां चोट तथा जले हुए घाव इत्यादिके संबंधमें भी दो शब्द कहना उचित जान पड़ता है। केवल इन्हीं विकारोंकी स्थानीय चिकित्सा करनेकी आवश्यकता पड़ती है; क्योंकि ये बाहरी कारणोंसे ही होते हैं। शरीरमें विकारी द्रव्य न होनेपर ऐसी चोटें, घाव आदि बहुत जल्द दूर होते हैं। विकारी द्रव्य हुआ तो देर लगती है और उस दशामें सारे शरीरकी चिकित्सा भी साथ-ही-साथ करनी पड़ती है।

: १५ :

आकृति-विज्ञान

मेरी नई चिकित्सा-विधिसे 'आकृति-विज्ञान'का इतना घनिष्ठ संबंध है कि दोनोंको अलग-अलग नहीं रखा जा सकता। जैसे घोड़ेके बिना सवारकी और किनारे बिना समुद्रकी कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार मेरा यह आकृति-विज्ञान, 'नीरोग होनेका नया उपाय'के सिद्धांतोंसे पृथक् नहीं हो सकता; न यह विकारी द्रव्यकी उपस्थिति, शरीरके अंदर उसके परिवर्तन तथा उबाल, और उसके कारण शरीरकी आकृतिके परिवर्तनसे ही पृथक् हो सकता है। केवल वही मनुष्य इस आकृति-विज्ञानको समझ सकता है, जिसने मेरी नई चिकित्सा-

विधिके सिद्धांतोंको समझा है—जो मेरी 'नीरोग होनेका नया उपाय' (The New Science of Healing) नामक पुस्तकमें विस्तार-पूर्वक वर्णन किये गये हैं। 'आकृति-विज्ञान'(The Science of Facial Expression) शब्द लोगोंको नवीन तथा अद्भुत-सा जान पड़ेगा। इसका कारण केवल यही है कि वे इस विषयका बहुत कम ज्ञान रखते हैं। नये उपायसे रोगकी परीक्षा करके उससे सारे शरीरका ज्ञान प्राप्त करनेकी विद्याके लिए मुझे इससे अधिक उपयुक्त शब्द नहीं मिला। पर परीक्षाकी नई विधिका एक नाम रखना जरूरी था और यही नाम रखना ठीक समझा गया। किसी ऐसे विषयका, जिसकी 'आकृति-विज्ञान' की भांति इतनी भिन्न-भिन्न शाखाएं हों, एक ही ऐसे शब्दमें, जिससे नया आदमी तत्काल मतलबको समझ ले, वर्णन करना कठिन काम है। हमें अपनी जिंदगीमें ऐसे बहुतेरे शब्द मिलते हैं जिनका अर्थ पहले कुछ और जान पड़ता था, पर उनका ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बाद और ही जान पड़ने लगा। आकृति-विज्ञान तथा मेरी नई चकित्सा-विधिमें लाभको समझानेके लिए हमें पुरानी चिकित्साओं तथा उनकी परीक्षा-विधियोंकी ओर ध्यान देना चाहिए।

एलोपैथीके अनुसार हजारों रोग और उनकी लाखों दवाइयां हैं। इन असंख्य रोगोंकी परीक्षाके लिए बड़े मूल्यवान और जटिल यंत्रोंसे काम लिया जाता है, जिनके उपयोगमें कुशल होनेकी शिक्षामें ही वर्षों गुजार देने पड़ते हैं। ऐसे पारदर्शक यंत्रोंका आविष्कार किया गया है जिनसे पेटके अंदरतककी चीजें देख ली जा सकती हैं। फिर भी इसकी परीक्षा-विधि अधूरी है। यदि इतना मालूम भी हो गया कि मनुष्य रोगी है, तब भी कोई लाभ नहीं, क्योंकि इन्हें रोगकी असलियतका तो पता ही नहीं रहता। सारी दवाइयां और डाक्टरीके शस्त्र भी रोगको दूर करनेमें अशक्त रहते हैं। रोगके सिर्फ बाहरी रूपमें उनकी सहायतासे कुछ परिवर्तन हो सकता है।

आज भी यह संभव है कि यदि भीतरी रोगसे ग्रसित मनुष्य दस डाक्टरोंकी सलाह ले तो दसों दस तरहकी राय देंगे। अगर संयोगसे दोकी राय मिल भी गई तो नुस्खे तो जरूर ही अलग लिखेंगे। तथापि सब-के-सब डाक्टर यही कहनेवाले मिलेंगे कि मैंने रोग-की ठीक पहचान की है और मेरा ही नुस्खा ठीक है, बाकी सबने भूल की है। परीक्षाकी वर्तमान वैज्ञानिक विधिकी उत्पत्ति भी हालहीके जमानेमें हुई है। बहुत

दिन नहीं हुए जब डाक्टरोंको किसी अंगको ठोककर और कानसे उसकी गति सुनकर परीक्षा करनेका उपाय मालूम न था। मुझे आज भी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध डाक्टरोंके वह परीक्षाके ढोंग, जो मेरी रुग्ण माताकी खाटके पास हुआ करते थे, याद हैं। हाथकी छड़ीपर ठुड्डी टेककर वे लोग पाचनके संबंधमें कुछ प्रश्न किया करते थे और यह पूछ लिया करते थे कि दर्द कहां है। फिर रोगीकी जीभ देखनेका स्वांग होता था। ये तुच्छ बातें ऐसी गंभीरता और रहस्य-पूर्ण ढंगसे की जाती थीं कि केवल ये स्वांग अनजान आदमीके मनपर उन डाक्टरोंका प्रभाव जमानेके लिए काफी थे। फिर एक नुस्खा लिखा फीस जेबमें रखी और किस्सा खतम किया। रोगीको इन नाटकोंसे कुछ लाभ नहीं होता। यदि रोगी अच्छा हो गया तो समझ लीजिए कि वह बिना डाक्टरोंके भी अच्छा हो जाता।

लगभग ५० सालसे हम इस ठोंक-पीटकी, रोगकी नई परीक्षा-विधिकी चर्चा सुनने लगे हैं, जिसे पेरिस-के डाक्टरोंने ईजाद किया था और जिसपर बेहद ढोल पीटे गये थे, मानो कोई बड़ा अद्भुत हलचल मचा देनेवाला आविष्कार हो गया हो। लेकिन आज इतने

दिनों वाद भी डाक्टर लोग वुद्धिमत्तासे आविष्कार किये हुए यंत्रोंकी सहायता तथा ठोंक-पीटकी परीक्षासे भी क्षय या अलसर जैसे भीतरी भयंकर रोगोंको उनके खूव वढ़ जाने और प्राय: असाध्य हो जानेके पहले पहचाननेमें असमर्थ हैं। ऐसे अनेक रोगियोंने मुझसे राय ली है कि जिनके फेफड़े बहुत दिनोंसे, वुरी तरहसे खराब हो रहे थे, पर जितने एलोपैथीके डाक्टरोंको उन्होंने दिखाया, सवने यही राय दी थी कि तुम्हारे फेफड़ोंमें कोई दोष नहीं है, वह विलकुल नीरोग हैं। दूसरे वहुतेरे उदाहरणोंमें चीर-फाड़की आवश्यकता वतलाई गई थी। लेकिन साथ ही डाक्टर साहव यह कह देते कि सूजन या फोड़ा अभी पका नहीं है, रोगीको कुछ दिन ठहरना चाहिए, इसके वाद चीरने लायक होगा। इसके पहले कुछ नहीं हो सकता। एलोपैथी रोगकी आरंभिक दशामें उसका कुछ उपाय नहीं कर सकती, क्योंकि उसकी परीक्षा-विधि रोगको प्रारंभिक दशामें पहचाननेमें सर्वथा असमर्थ रहती है। एलोपैथी अनेक रोगोंको तो तव पहचानती है जब उनसे शरीरके अंग नष्ट हो जाते हैं या उनकी सूरत वदल जाती है। स्नायु-विकारके संवंधमें तो एलोपैथीकी परीक्षा-विधि निहायत

निकम्मी है। उसके पूर्ण रूपसे बढ़ जानेपर ही पहचान कर सकती हैं। जैसे मानसिक विकारोंके बढ़कर पागलपनकी सीमामें न पहुंच जानेतक अथवा भयंकर सिर-दर्द आदि रोग न होने लगनेतक बात डाक्टरके ध्यानमें ही नहीं आती। एलोपैथीके डाक्टर इन रोगोंकी आरंभिक अवस्थासे अभीतक अनजान हैं; क्योंकि उन्हें रोगोंकी असलियतका पता नहीं है। यदि स्नायु-विकारोंको वे पहचान भी लें तो उन्हें दूर करनेमें असमर्थ हैं। कारण, अभीतक वे उनके लिए किसी उपयुक्त औषधकी तलाशमें ही फिर रहे हैं।

उदाहरणके लिए, कुछ समय हुआ एक फौजी अफसर मेरे पास चिकित्साके लिए आया। उसके ज्ञान-तंतुओंमें बुरी तरह विकार उपस्थित हो गया था। तथापि, जब उसने छुट्टीके लिए दरख्वास्त देनेको डाक्टरका सार्टिफिकेट चाहा तो उसे बड़ी कठिनाई पड़ी। डाक्टरने बड़े ध्यानसे जांच करनेके बाद कहा कि रोगका कहीं लेश भी नहीं देख पड़ता, सब इंद्रियां अपना काम ठीक कर रही हैं। तुम्हें सिर्फ बीमारीका वहम हो गया है। लेकिन जिस भयंकर ज्ञानतंतु-विकार-से रोगी कष्ट पा रहा था उसका अनुभव दूसरा कोई

कैसे कर सकता था ? डाक्टरके कह देनेपर भी, कि तुम्हें केवल भ्रम हो गया है, उसे विश्वास न आया।

होमियोपैथीकी इमारतकी नींव भी एलोपैथीकी भांति ही रखी गई है। यद्यपि इसमें यह माना जाता है कि दवा बहुत कम मात्रामें देनेसे अधिक लाभ होता है—जैसे जल अपने हल्के रूप अर्थात् भाप बनकर इंजिन आदि चलानेमें समर्थ होता है, यद्यपि अपनी असली दशामें इसमें इतनी शक्ति नहीं होती—इसी तरह होमियोपैथीने भी यह आविष्कार किया है कि दवाइयां एलोपैथीकी भांति न देकर बहुत कम मात्रामें दी जायं तो उनसे लाभ अधिक और हानि कम होगी। इस कम मात्राके सिद्धांतके कारण होमियोपैथी एलोपैथीसे श्रेष्ठ है, पर परीक्षा-विधिमें यह एलोपैथीसे भी गई बीती है, क्योंकि उसीकी तरह यह भी हजारों रोग मानती है और उनकी हरएककी खास-खास दवाइयां रखी गई हैं। पर उनका असर तब होता है जब परीक्षा द्वारा रोगकी जांच हो जाय। वास्तवमें होमियोपैथीके अनुसार औषधोंकी मात्राको अधिकाधिक कम करनेकी रीतियां ऐसी जटिल हो गई हैं कि जो लोग इसे सीखना चाहते हैं उन्हें मुद्दततक मग्जपच्ची करनी पड़ती है।

धन्यवाद दीजिए इस नई चिकित्सा-विधि और

आकृति-विज्ञानको कि जिसके कारण हम सब झंझटोंसे मुक्त हो गये। हम केवल एक ही रोग मानते हैं। हां, रूप उसके अनेक होते हैं; पर मूल सबका एक ही है और सबका परस्पर घनिष्ठ संबंध है। और इसी सिद्धांतके अनुसार इन विश्व-चिकित्सक "धूप, प्रकाश, वायु और प्राकृतिक भोजन"के अतिरिक्त अपनी चिकित्सामें हम केवल जलका बहुत सरल रूपमें प्रयोग करते हैं—हमारे निकाले हुए ठंडे स्नानोंके रूपमें और आवश्यकता जान पड़नेपर वाष्प-स्नानके रूपमें इस आश्चर्यजनक सरल चिकित्सा-विधिमें मेरा आकृति-विज्ञान सफलताकी प्रतिज्ञा करता है। सबसे पहले मैं यह कह देना चाहता हूं कि मेरी परीक्षा-विधिका पुरानी चिकित्सा-विधियोंसे कोई संबंध नहीं है। यह एक बिलकुल ही नई चीज है और इसको इसी दृष्टिसे देखनेपर इसका पूरा महत्त्व जान पड़ेगा। यदि कोई पुरानी विधियोंसे इसकी एक-एक बात मिलाकर इसे सीखना चाहे तो वह आकृति-विज्ञानका प्रयोग करना भी न सीख सकेगा।

वर्तमान प्रचलित चिकित्सा-विधियां रोगके प्रत्यक्ष प्रकट हो जानेतक कोई उपाय नहीं कर सकतीं, क्योंकि जबतक रोगीको स्वयं उसका ज्ञान न हो जाय तबतक

वह उसे देखकर जान ही नहीं सकते ! आकृति-विज्ञान-की बदौलत आज हम ऐसी अच्छी स्थितिमें हैं कि एक निश्चित रूपसे बीमारीकी वृद्धि, उसकी दबी हुई दशा तथा उसकी आरंभिक अवस्थाको भलीभांति जान सकते हैं। हमें रोगके पूर्णरूपसे बढ़ जाने यानी सब लोगोंकी नजरोंमें आ जानेतक ठहरना नहीं पड़ता। रोगके असाध्य हो जानेतक हमें बाट नहीं देखनी पड़ती। अब हमारी ऐसी स्थिति है कि हम जब चाहें निर्भ्रांत रूपसे रोगकी दशाको जान सकते हैं, अतएव रोगीके स्वयं अनुभव करनेके बहुत पहले ही यह बात हो सकती है। इसलिए हम इच्छा करते ही रोगको दूर करनेके लिए चिकित्सा आरंभ कर सकते हैं, इंतजारीमें वक्त खराब करनेकी जरूरत नहीं होती है।

इसके सिवा हमें रोगीको यह पूछनेकी आवश्यकता नहीं रही कि रोग कहां है, रोगके लक्षण क्या हैं ? बल्कि स्वयं ही तत्काल निश्चित चिह्नोंसे हम उन्हें पहचान सकते हैं। अपने कामके लिए हमें वर्तमान प्रचलित चिकित्साओंकी भांति बहुमूल्य शस्त्रोंकी आवश्यकता नहीं पड़ती। परीक्षाके लिए हमारी आंखें ही काफी हैं। परीक्षाके ये यंत्र सदा हमारे साथ रहते हैं और यह कहना कोई गर्वकी बात न होगी कि यदि मनुष्य

इस नवीन विद्याका काफी अभ्यास कर ले तो उसकी आंखें उसे कभी संदेह या धोखेमें न पड़ने देंगी। इस प्रकार सरल हो जानेसे परीक्षा-विधिमें बड़ी महत्त्वपूर्ण उन्नति हुई है। स्त्रियोंके गुप्त रोगोंकी परीक्षाके लिए तो यह बहुत ही अमूल्य उपाय है। अब इन रोगोंके लिए स्थानीय परीक्षाकी कोई आवश्यकता नहीं रही। अब हम पूर्ण तथा निश्चित रूपसे पेड़ूकी भीतरी दशाको, स्थानीय परीक्षा-विधिसे जितना संभव है उससे कहीं अधिक अच्छी तरहसे जान सकते हैं। कहना नहीं होगा कि स्त्रियों तथा इन रोगोंवाली लड़कियोंको परीक्षा-विधिमें किस प्रकार लज्जाका सामना करना पड़ता था। अब उन्हें उससे छुटकारा मिल गया है।

यहां संदेह किया जा सकता है कि जब हम एक ही रोग और उसकी एक ही चिकित्सा मानते हैं तो परीक्षा करना ही व्यर्थ है। ठीक है, हमारे पास किसी ऐसे रोगीको, जो अपने रोगका ज्ञान रखता है, आनेपर उसे हमारी परीक्षा-विधि सिर्फ रोगका स्थान बतला देती है। आकृति-विज्ञानका अधिक महत्त्व इस बातमें है कि हम इसकी सहायतासे निश्चित रूपसे शरीरका रोगकी ओर झुकाव जान सकते हैं। इसलिए प्रत्येक मनुष्य जान सकता है कि उसके शरीरमें रोगका आरंभ हुआ

है या नहीं। केवल एक इसी बातसे यह संभव है कि हम निश्चित रूपसे रोगोंके आक्रमणसे बच सकते हैं और मेरी चिकित्सा-विधि इस विद्याकी कुंजी है।

आकृति-विज्ञानकी सहायतासे हम अस्वस्थ शरीरकी आकृतिके छोटे-से-छोटे परिवर्तनको भी तत्काल जान सकते हैं और इस तरह सारे शरीर अथवा उसके किसी अंगकी दशाका निश्चित रूपसे ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं; क्योंकि इन सारे परिवर्तनोंकी उत्पत्ति शरीरके एक ही भागमें अर्थात् मेदेसे होती है।

'नीरोग होनेका नया उपाय' (The New Science of Healing) नामक अपनी पुस्तकमें मैंने रोगोंकी एकताका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है, यह दिखलाया है कि प्रत्येक रोग ज्वर है, चाहे दबी हुई दशामें हो अथवा प्रकट दशामें। और इस ज्वरके कारण शरीरकी आकृतिमें परिवर्तन होते हैं, जिन्हें हम सरलतासे देख सकते हैं और इसी बातपर मेरे आकृति-विज्ञानकी नींव रखी गई है।

कोई तीव्र रोग प्रकट होनेके पहले कुछ समयतक शरीरमें दबा हुआ रहता है। इसलिए यह बात ध्यानमें भी नहीं आ सकती कि पूर्ण स्वस्थ मनुष्यपर एकाएक चेचक, हैजा, पेचिश इत्यादि रोगोंका आक्र-

मण हो सकता है। पहलेसे ही इन रोगोंकी ओर झुकाव होनेसे ये रोग होते हैं। हमारे शब्दोंमें कहिये तो रोग तभी संभव है जब पहलेसे शरीरमें विजातीय द्रव्य भरा हो।

रोगकी ओर होनेवाले झुकावका पहले कुछ अनुमान किया जाता था, पर पूर्ण ज्ञान असंभव था। आज निश्चय-पूर्वक प्रत्येक दशामें आकृति-विज्ञानकी सहायताद्वारा रोगके झुकावको जान सकते हैं। रोग-की ओरके झुकावसे शरीरकी आकृतिमें होनेवाले परि-वर्तनोंसे परिणाम निकालना तो आकृति-विज्ञानका कार्य है, पर यों इसका सिखलाना सम्भव नहीं है। इसकी शिक्षा अभ्याससे ही हो सकती है।

परिशिष्ट

वाष्प-स्नान

स्वास्थ्यके लिए त्वचाका अपना काम नियमित रूपसे करते रहना बहुत ही आवश्यक है। नीरोग दशामें विना किसी अन्य सहायताके त्वचा अपना काम करती है, पर रोगकी दशामें त्वचासे उसका काम करानेके लिए सबसे अच्छा वाष्प-स्नान है।

बहुत दिनोंतक ग्रंथकर्त्ता एक ऐसा सीधा-सादा खटोला वनानेकी धुनमें रहा कि जो अधिक रोगी
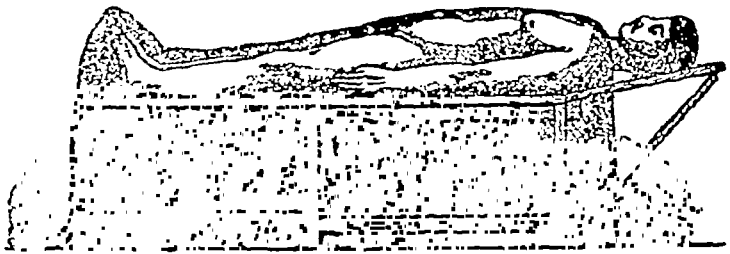
मनुष्योंके लिए भी प्रत्येक परिवारमें काम आ सके। अंतमें उसने एक ऐसा खटोला वनाया जिसे टुकड़े-टुकड़े करके रखा जा सके। समेटकर रखनेपर यह एक मामूली कुर्सीकी जगह रोकता है। इसे काममें लाने-

वालेको किसी विशेष निपुणता या कौशलकी आवश्य-
कता नहीं होती ।
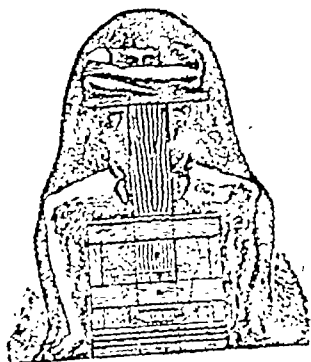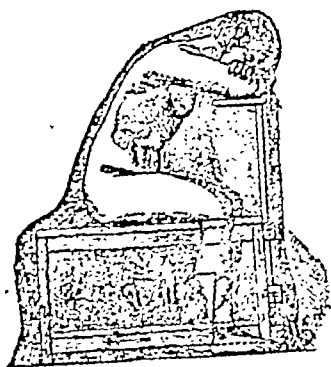
इसके उपयोगके लिए एक वड़ा कंवल, कुछ वरतन और एक टवकी आवश्यकता होती है। इससे वड़ा लाभ यह है कि सारे शरीरको अथवा शरीरके किसी विशेष अंगको भी भाप दे सकते हैं।

चित्रमें दिखाये अनुसार खटोलेको फैलाकर तीन या चार वरतनोंमें चूल्हेपर पानी गर्म करना चाहिए। पानी छलके नहीं, इसलिए वरतनोंको कुछ खाली रखना चाहिए। छोटे वच्चोंके लिए एक ही वरतन काफी होगा।

पानी ज्योंही उवलने लगे, रोगीको नंगे होकर पहले पीठके वल उस खटोलेपर लेट जाना चाहिए।

फिर ऊपरसे एक कंबल इस तरह डालना चाहिए कि उसके किनारे जमीनसे अच्छी तरह सट जायं जिसमें भाप इधर-उधरसे निकल न सके। सिर भी पहले ढक लेना चाहिए। यह हो चुकनेपर, कपड़ेको धीरेसे उठाकर, एक मनुष्यको खौलते हुए पानीका एक बरतन लेटे हुए मनुष्यकी पीठके नीचे और दूसरा पैरोंके नीचे रख देना चाहिए। बरतनोंपर ढकने अवश्य होने चाहिए और इच्छानुसार उष्णताको कम अथवा अधिक करनेके लिए उनको कम अथवा अधिक खोल देना चाहिए। लगभग दस मिनट हो जानेपर भाप कम होने लगेगी। तब चूल्हेपर चढ़ा हुआ तीसरा बरतन उठाकर पीठके नीचे रख देना चाहिए और पहले बरतनको उठाकर फिर आगपर चढ़ा देना चाहिए। जब उससे भाप अच्छी तरह निकलने लगे तब पैरोंके नीचेवाले बरतनको भी बदल देना चाहिए। परंतु बहुधा पैरोंके नीचेके बरतनको बदलना नहीं पड़ता। कोई दस-पंद्रह मिनटके अनंतर मनुष्यको पेटके बल लेट जाना चाहिए, जिसमें पेट, पेड़ू और छातीपर खूब भाप लगे। यदि अबतक पसीना न निकला होगा तो अब अवश्य निकलेगा और पैर तथा सिर दोनोंसे एक ही साथ निकलने लगेगा। जिनको पसीना शीघ्र नहीं आता उनको

सिर ढका रखना चाहिए। परंतु जिनको शीघ्र आता है, उनके लिए सिर ढकना कोई विशेप आवश्यक वात नहीं है। तथापि पहले थोड़ी देरके लिए उसे अवश्य ढक लेना चाहिए।

पंद्रह मिनटसे लेकर आध घंटेतक पसीना निकलने देना चाहिए। पसीना निकल आनेपर वरतनोंका वदलना अथवा न वदलना अपनी इच्छापर अवलंवित है। शरीरके जिन भागोंमें विकारवान् पदार्थ अधिक एकत्र रहते हैं, उन भागोंमें देरसे पसीना निकलता है। रोगी ऐसे भागोंपर स्वयं देरतक भापका अधिक प्रयोग करना चाहेगा। उसकी यह इच्छा जरूर पूरी होने देनी चाहिए। ऐसा करनेसे ही वाष्प-स्नानका पूरा लाभ होता है।

वाष्प-स्नानके अनंतर शीघ्रत-ापूर्वक ठंडे जलसे थोड़ा स्नान कर लेना चाहिए। इसके वाद उदर-स्नान लेना चाहिए। फिर खुली हवामें घूमने जाना चाहिए। पसीना आनेसे शरीरके भीतर किसी प्रकारकी उत्तेजना नहीं होती, केवल त्वचामें गर्मी पैदा हो जाती है। इसलिए किसीको वाष्प-स्नानके वाद स्नान लेनेसे डरना न चाहिए। लोहेको आगमें खूब लाल करके ठंडे पानीमें डुवोनेके वाद पीटना शुरू करते हैं जिससे

वह भुरभुरा या निकम्मा न हो जाय। यही दशा मनुष्य-शरीरकी भी है।

बहुत अधिक बीमारों या छोटे बच्चोंको वाष्प-स्नान देना उचित नहीं है; क्योंकि इस स्नानसे उनके शरीरमें विजातीय द्रव्य बहुत ढीला हो जाता है। उनमें इतनी शक्ति नहीं होती कि उसे इतनी तेजीसे वाहर निकाल सकें। ऐसे रोगियोंको पेड़ूपर पट्टी बांधनी चाहिए। इसे तैयार करनेकी निम्नलिखित रीति है—एक अंगोछेको ठंडे पानीमें भिगोकर अच्छी तरह निचोड़ लेना चाहिए। फिर उसे पूरे पेड़ूपर रख देना चाहिए। सावधानी और मजबूतीसे ऊपरसे एक ऊनी कपड़ेसे बांध देना चाहिए। फिर रोगीको विस्तरेपर लिटाकर खूब गर्म कपड़ोंसे ढक देना चाहिए, जिसमें उसे पसीना आ जाय।

२१२ डिगरी फारेनहाइटतक गर्म करनेके बाद भाप पैदा होती है। भापके वोयलरों जैसी ही भाप इन वरतनोंमें भी पैदा होती है। अंतर केवल भापके परिमाणमें होता है जो एक वारके प्रयोगसे मालूम हो जायगा। ये बरतन अपने कार्यके लिए यथेष्ट हैं। ग्रंथकर्ताने एक ऐसा वरतन वनाया है जो स्प्रिटकी वत्तीसे गर्म किया जाता है।

वाष्पस्नानके लिए यदि किसीको पूर्वोक्त प्रकारकी वेंच या चारपाई समयपर न मिल सके तो वेंतसे वुनी हुई कुरसीसे उसका काम निकल जायगा। कुरसीपर वैठकर नीचेसे गरम पानीका वरतन रख देना चाहिए और कुरसीसमेत शरीरको कंवलसे ढककर वैठना चाहिए और पांव एक दूसरे वरतनपर, जिसमें खौलता हुआ पानी आधी दूरतक भरा हो, दो लकड़ी रखकर उसपर रखना चाहिए। वहुत कमजोर आदमियोंको इस प्रकार स्टीमवाथ लेनेमें वहुत कष्ट हो सकता है। सुतली या मूंजकी विनी चारपाईपर लेटकर भी वाष्पस्नान लिया जा सकता है।

उदर-स्नान

(THE HIP BATH)

उदर-स्नानके टवमें इतना पानी भरना चाहिए कि जिसमें एक ओर नाभितक और दूसरी ओर जांघतक पहुंचे। पानी ६४से ७७ डिगरी फारेनहाइटका लेना चाहिए। वाष्प-स्नानके वाद ६४ डिगरीसे अधिक ठंडा लिया जा सकता है। इससे त्वचामें गर्मी शीघ्र आती है। यह वहुत आवश्यक वात है कि हाथ-पांव तथा शरीरका ऊपरी हिस्सा शेप अंगोंके साथ ठंडा न

किया जाय; क्योंकि उनमें प्रायः रक्तकी कमी हुआ करती है। यदि आवश्यक जान पड़े तो उन्हें ऊनी कंवलसे ढक लेना चाहिए।

उदर-स्नानके वाद तत्काल शरीरमें गर्मी लानी चाहिए, जिसके लिए सवसे अच्छा यह होगा कि खुली हवामें व्यायाम किया जाय। यदि रोग वढ़ा हुआ है तो बीमारको सावधानीसे विस्तरेमें ढककर गर्मी लानी चाहिए। यदि गर्मी देरसे आती जान पड़े तो शरीरके चारों ओर ऊनी कपड़ा लपेटा जा सकता है। स्नान लेनेके वाद शरीरकी मामूली गर्मी लौट आनेतक कुछ खाना न चाहिए। एक दिनमें ऐसे उदर-स्नान एकसे तीनतक लिये जा सकते हैं। वहुत-सी दशाओंमें उदर-स्नानके वदले मेहन-स्नान लेना अधिक लाभकारी होगा। यह प्रायः शीघ्र और अधिक परिणाम-कारक होता है। इससे आंत और गुर्दा अपना काम वड़ी तत्परतासे करने लगते हैं। इसमें आवश्यकतासे अधिक उत्तेजनाकी आशंका नहीं है। साथ ही इससे शरीरके उन भीतरी भागोंमें, जिनमें वुखारकी एक धधक-सी वनी रहती है, ठंडक पहुंचती है। इस स्नानको लेते समय रोगीको सर्दी नहीं सताती; क्योंकि शरीरका वहुत ही थोड़ा भाग इसमें ठंडा किया जाता है, वल्कि

एक गुलाबी गर्मी जान पड़ती है। मेहन-स्नानका विस्तृत वर्णन 'नीरोग होनेका नया उपाय'में देखिए।

शेष

जिस मनुष्यने अपना खोया हुआ स्वास्थ्य-रूपी अमूल्य रत्न फिर पा लिया है और पहले बतलाए लक्षणोंको देखकर जो नित्य अपनी पूर्ण नीरोगताका ज्ञान प्राप्त कर लेता है वही इस प्राप्त रत्नका मूल्य भलीभांति समझ सकता है।

शारीरिक और मानसिक शक्ति, परिश्रमके लिए असीम उत्सुकता तथा बल और तेज जन्मभरके लिए उसके साथी बन जाते हैं। उसका जीवन शांति तथा आनंदसे पूर्ण हो जाता है।

'प्राकृतिक चिकित्सा-संघ'का

परिचय

गांधीजी बैरिस्टरीकी शिक्षाके लिए विलायत गये थे तब, निरामिष होटलकी खोज करते हुए, उन्हें कुछ पुस्तकें मिलीं, और कुछ व्यक्ति भी, जिनके द्वारा उनका प्राकृतिक चिकित्सासे परिचय हुआ। तभीसे उनके मनमें दवादारूके विरुद्ध संस्कार जमने लगे। दक्षिण अफ्रिका जाकर तो उन्हें इस चिकित्साको अपने ऊपर, कुटुंबियों तथा अन्य लोगोंपर, पूरी तरह आजमाने और उसके लाभ देखनेका अवसर मिला। हिंदुस्तान आकर भी, कभी बीमार पड़नेपर, वह इसी पद्धतिका आश्रय लेते थे और दूसरे बहुतों-को इस पद्धतिके मार्फत नीरोग होनेमें मदद करते थे।

इस विषयपर उन्होंने गुजरातीमें 'आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान' के नामसे[1] एक किताब दक्षिण अफ्रिकामें रहते हुए सन् १९०२के लगभग, दूसरी 'आरोग्यनी चावी'[2] सन् १९४३-४४में लिखी थी। पहली पुस्तकके नीचे दिये हुए अवतरणोंसे पाठक देखेंगे कि वह प्राकृतिक चिकित्साके कितने पक्षपाती थे। वह कहते हैं:

"लोगोंकी आदतमें यह शामिल हो गया है कि जरा-सा बीमार पड़ते ही डाक्टर, वैद्य या हकीमके यहां दौड़ते हैं। अथवा किसी हजाम या पड़ोसीकी सलाहसे कोई दवा इस्तेमाल करते हैं। हमने मान लिया है कि बिना दवाके रोग नहीं जाता।[3] यह बड़े वहमोंमेंसे एक है, इस वहम-

---

[1] हिंदी अनुवादका नाम 'आरोग्य-साधन' है।

[2] हिंदी अनुवाद 'आरोग्यकी कुंजी' है।

[3] इस भावनाको दरसानेवाली एक कहावत है—"रोग मिटे कछु औखद खाये।"

की बदौलत लोगोंने जितना दुःख भोगा और भोग रहे हैं उतना अन्य कारणोंसे न भोगा है, न भोगेंगे। इलाज करना चाहिए, लेकिन उसके लिए दवा लेना फजूल है। इतना ही नहीं, उससे बहुत बार तो नुकसान होता है।

"अनुभवसिद्ध है यह, कि जिस घरमें एक बार दवाकी बोतलका प्रवेश हुआ कि फिर वहांसे वह निकलनेका नाम ही नहीं लेती। अनगिनत आदमी सारी जिंदगी कोई-न-कोई रोग पल्ले बांधे फिरते हैं, दवाइयां और डाक्टर बदलते रहते हैं। वे ऐसे वैद्यकी तलाशमें भटकते हैं जो उन्हें रोगसे मुक्ति दिला दे। नतीजा यह होता है कि जिंदगीभर खुद हैरान होते हैं और दूसरोंको परेशान करते हैं। अंतमें तड़फड़ा-तड़फड़ाकर प्राण छोड़ते हैं।

"फ्रांसके बड़े फिजियालोजिस्ट मेजेंदीने कहा है, "डाक्टरी बड़ेसे बड़ा पाखंड है।"

मशहूर डाक्टर सर ऐस्ली कूपरका कहना है, "डाक्टरीका आधार निरी अटकलपर है।"

डाक्टर फ्राय कहते हैं, "डाक्टरीसे बढ़कर बेईमानीका पेशा दुनियामें शायद ही दूसरा हो।"

डाक्टर फ़ाजवेल कहते हैं. "यदि डाक्टरीका सत्यानाश हो जाय तो मनुष्य-जातिका महान् कल्याण होगा। जहां-जहां डाक्टर-वैद्य बढ़े हैं वहां-वहां बीमारियां बढ़ी हैं।"

डाक्टर और दवाइयोंके संबंधमें ऐसे ही विचार रखनेके कारण गांधीजीने अपने १८ रचनात्मक कामोंकी सूचीमें प्राकृतिक चिकित्साके प्रचारको भी स्थान दिया था।

पर 'नवजीवन' और 'हरिजन'में इस विषयपर लिखने, और कुछ साथियोंका इलाज अपनी देख-रेखमें करते रहनेके सिवा, अन्य अनेक

कामोंमें लगे रहनेकी वजहसे, गांधीजी अपने जीवन-कालमें इस कामको आगे न बढ़ा सके।

मृत्युके लगभग १॥ साल पहले गांधीजीने मुझे एक लंबे पत्रमें इस संबंधमें अपनी कुछ कल्पना समझाते हुए लिखा था कि उनकी पूरी कल्पना समझ लेनेके लिए अवकाश मिलनेपर मैं उनके पास जाऊं। साथ ही, मुझसे यह भी चाहा था कि मैं अपने जीवनका आखिरी हिस्सा इस काममें लगाऊं। संयोगवश मैं उस समय वर्धा न जा सका।

प्राकृतिक चिकित्सा-संघ

पर आंगुल (उड़ीसा)में सर्वोदय-सम्मेलनके समय (११अप्रैल, १९५०को) कुछ मित्रोंके 'प्राकृतिक चिकित्सा-संघ'की स्थापनाका, प्रस्ताव करनेपर मैंने इसमें योग देना अपना कर्तव्य माना। मैंने मित्रोंके आग्रहसे इस वर्षके लिए संघके अध्यक्षपदकी सेवा स्वीकार की है। निम्नलिखित सज्जन कार्यकारिणीके सदस्य चुने गये हैं:

१. श्री डा० वी० कृष्णम् राजू, उपाध्यक्ष।
 चिकित्सक, संचालक 'रामकृष्ण प्रकृति आश्रम', भीमावरम्(आंध्र)
२. श्री डाक्टर कुलरंजन मुखोपाध्याय, चिकित्सक, प्राकृतिक चिकित्सा-विभाग मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, कलकत्ता।
३. श्री डा० आत्माराम कृष्ण भागवत, चिकित्सक, 'निसर्गोपचार आश्रम', उर्लीकांचन (पूना)।
४. श्री डा० रामचंद्र शर्मा, चिकित्सक, 'गांधी-स्वास्थ्य-सदन,' अलवर।
५. श्री डा० विट्ठलदास मोदी, चिकित्सक, 'आरोग्य-मंदिर' गोरखपुर।
६. श्री डा० देवराज वोहरा, चिकित्सक, 'नेचर-योगिक-हेल्थ-होम,' नीलोखेड़ी।

प्राकृतिक चिकित्सा-संघका संक्षिप्त विधान

उद्देश्य—प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धांतोंका प्रचार और इस संबंधमें अधिक शोध करना।

कार्यालय—प्रधान कार्यालय गोरखपुरमें होगा।

सदस्यता—प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धांतोंमें विश्वास रखनेवाले व्यक्ति इसके सदस्य हो सकेंगे।

पदाधिकारी—अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मंत्री, उपमंत्री और कोषाध्यक्ष।

कार्य-समिति—संघके कार्यसंचालनके लिए एक कार्य-समिति होगी, जिसमें उपर्युक्त पदाधिकारी तथा ६ अन्य सदस्य होंगे। पदाधिकारी तथा सदस्योंका चुनाव संघके सामान्य सदस्य करेंगे। इस कार्य-समितिको आवश्यक उपनियम बनानेका अधिकार होगा।

कार्य-विधि—(१) प्राकृतिक चिकित्साकी शिक्षाके लिए शिक्षा-केंद्र स्थापित करना, (२) विभिन्न स्थानोंमें प्राकृतिक चिकित्सा-संघकी शाखाएं खोलना, (३) प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी साहित्य प्रकाशित करना, (४) चिकित्सालय खोलना और चलाना, (५) उद्देश्यकी पूर्तिमें सहायक अन्य दूसरे काम।

वार्षिक अधिवेशन—सर्वोदय-सम्मेलनके अवसरपर संघका वार्षिक अधिवेशन हुआ करेगा।

साधारण बैठक—साधारणतः सालमें चार बार कार्य-समितिकी बैठकें होंगी।

कोरम—कार्य-समितिकी बैठकोंका कोरम चार सदस्योंका होगा।

नियमोंमें परिवर्तन—नियमोंमें परिवर्तनकी आवश्यकता होनेपर वार्षिक सम्मेलनमें उपस्थित तीन-चौथाई सदस्योंकी रायसे हो सकेगा ।

प्राकृतिक चिकित्साके प्रचारके लिए किये गए चार कामोंमें साहित्य प्रकाशित करना एक काम है । तदनुसार संघकी ओरसे पहली पुस्तक 'मैं तंदुरुस्त हूं या बीमार ?' प्रकाशित की जा रही है । आशा है, संघके प्रेमी सदस्य इसके प्रचारका प्रयत्न करेंगे । पाठकोंसे हमारा निवेदन है कि जिन्हें प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धांतोंसे सहानुभूति हो उन्हें स्वयं इसका सदस्य बनकर अपने-जैसे ही दूसरे व्यक्तियोंको सदस्य बनानेकी कोशिश करनी चाहिए ।

प्राकृतिक चिकित्साके प्रचारमें जो सज्जन किसी प्रकारकी सहायता लेना-देना या कोई सूचना चाहें वे प्रा० चि० संघ कार्यालय, गोरखपुरसे पत्र-व्यवहार करनेकी कृपा करें ।

पुस्तकोंपर कमीशन

संघके सदस्योंको यहांसे प्रकाशित पुस्तकें गोरखपुर-कार्यालयसे मंगानेपर २५% कम दामपर मिलेंगी ।

प्राकृतिक चिकित्सा संघ, गोरखपुरसे इस पुस्तकमें बतलाया हुआ वाष्पस्नानका खटोला, उसके बर्तन, उदर स्नान तथा एनिमा आदि सब वस्तुएं उचित मूल्यपर मिल सकेंगी ।

जवाबी पत्र भेजें

किसी तरहके पत्र व्यवहारके लिए जवाबी पत्र भेजना चाहिए ।

—महावीरप्रसाद पोद्दार
अध्यक्ष, प्रा० चि० संघ, गोरखपुर